पंजाब राज्य सचिव के माध्यम से

बनाम

राज कुमार व अन्य

आपराधिक अपील संख्या 537/2003

11 अगस्त, 2008

(डॉ. अरिजीत पसायत और जी.एस. सिंघवी, जेजे.)

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872:

मृत्युकालीन कथन- के आधार पर दोषसिद्धि- अभिनिर्धारित कियाः स्थिति जिसमें एक व्यक्ति अपनी मृत्यु शैया पर गंभीरतम स्थिति में है तो विधि में यह विश्वास करने योग्य कारण है कि मृत्युकालीन कथन सत्य है- इस प्रकार के कथन को अनदेखा करना न्याय के उदेश्य को विफल बनाता है। लेकिन मृत्युकालीन कथन इस प्रकार का होना आवश्यक है कि न्यायालय के समक्ष इसकी शुद्धता/सत्यता विश्वसनीय हो- एक बार जब न्यायालय संतुष्ट हो जाता है कि मृत्युकालीन कथन सत्य व स्वैच्छिक था, तब बिना किसी संपुष्टि के केवल मात्र मृत्युकालीन कथन के आधार पर दोषसिद्धि हो सकती है- वर्तमान मामले में, अभियोजन, अभियुक्त सं. 2 के विरुद्ध अभियोग मृत्युकालीन कथन के आधार पर स्थापित करने में सफल रहा है- लेकिन मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए अपराध अन्तर्गत धारा 304 भाग- प के तहत 6 वर्ष के कारावास की अवधि न्याय के लिए न्यायोचित है- सजा- दंड संहिता 1860- हत्या/ आपराधिक मानव वध-धाराएं 302 व 304 भाग-2- मृत्युकालीन कथन- साक्ष्य में ग्राह्यता।

अभियोजन पक्ष के अनुसार, अभियुक्त सं. 1 पति व मृतका पत्नी के बीच में आपसी संबंध तनावपूर्ण था। पति और उसके परिवारजन द्वारा बार बार दहेज की मांग किये जाने के कारण अभियुक्त सं. 1 पति व मृतका पत्नी के बीच में आपसी संबंध तनावपूर्ण थे। दिनांक 12 मार्च, 1996 को पीड़िता के ऊपर केरोसिन डालकर पीड़िता की सास द्वारा आग लगा दी गई। पीड़िता के चिल्लाने पर उसकी आवाज सुनकर मृतका के पति का भाई व उसकी पत्नी आए और उसे अस्पताल लेकर गए जिसके कथन गवाह पी.डब्ल्यू. 9 एक चिकित्सक द्वारा लेखबद्ध किए गए, जिसके आधार पर दूसरे दिन प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। मजिस्ट्रेट द्वारा भी पीड़िता के कथन लेखबद्ध किए गए। जिसके पश्चात् दिनांक 14 मार्च, 1996 को पीड़िता की मृत्यु हो गई। जाँच पूरी होने पर, पुलिस ने आरोपी पति व उसके माता- पिता के खिलाफ अपराध अन्तर्गत धारा 302 सपठित धारा 34 भारतीय दंड संहिता में आरोप पत्र प्रस्तुत किया। विचारणीय न्यायालय द्वारा मृत्युकालीन कथन के आधार पर अभियुक्तगण को अपराध अन्तर्गत धारा 302 सपठित धारा 34 भारतीय दंड संहिता में दोषी मानकर आजीवन कठोरतम कारावास की सजा सुनाई। जिसके विरुद्ध आरोपीगण द्वारा अपील करने पर उच्च न्यायालय द्वारा यह अपील स्वीकार की जाकर मामला वर्तमान स्थिति में है। अपीलार्थी-राज्य ने तर्क दिया कि उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से गलत है। यदि अभियुक्तगण के तर्कों के अनुसार यह स्वीकार किया जाता है कि किसी प्रकार की हेरफेर की गई है तो मृत्युकालीन कथन का कोई प्रभाव नहीं रहता है।

आंशिक रूप से अपील को स्वीकार करते हुए न्यायालय ने यह अवधारित किया है कि -

1.1 ऐसी परिस्थिति जहां एक व्यक्ति गंभीरतम स्थिति में मृत्युशैय्या पर है, तब विधि में उक्त मृत्युकालीन कथन की सत्यता को स्वीकार करने का उचित कारण है। जिसके कारण प्रतिपरीक्षा एवं शपथ की भी आवश्यकता नहीं है। परंतु जहां एक तरफ

यदि मृत्युकालीन कथन को महत्व नहीं दिया जाता है तो न्याय का उद्देश्य विफल हो जाएगा क्योंकि पीड़ित व्यक्ति ही इस प्रकार के गंभीर अपराध में चश्मदीद साक्षी है, मृत्युकालीन कथन को महत्व नहीं दिये जाने पर न्यायालय के समक्ष लैशमात्र भी साक्ष्य नहीं रहती है। (पैरा सं. 4) [1175 ई, एफ]

1.2 यद्यपि एक मृत्युकालीन कथन को काफी महत्व दिया जाता है। जिसके संबंध में अभियुक्त को प्रतिपरीक्षा करने की शक्ति नहीं है। सत्य को जांचने के लिए शपथ का दायित्व भी आवश्यक है। यही कारण है कि न्यायालय द्वारा मृत्युकालीन कथन इस प्रकृति का होना चाहिए कि उसकी सत्यता की विश्वसनीयता रहे। न्यायालय को इस बात से सावधान रहना चाहिए कि मृतका के कथन न तो सिखाये गये हो अथवा बोले गये अथवा कल्पनाओं पर आधारित नहीं हो। अदालत को इस बात से भी संतुष्ट होना चाहिए कि हमलावर को देखने और पहचानने के स्पष्ट अवसर के बाद मृतक मानसिक स्थिति में था। एक बार जब न्यायालय संतुष्ट हो जाता है कि घोषणा सत्य और स्वैच्छिक थी, तो निस्संदेह, वह बिना किसी अतिरिक्त पुष्टि के अपनी सजा को आधार बना सकता है। यह कानून के पूर्ण नियम के रूप में निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि मरने से पहले दिया गया बयान दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं बन सकता जब तक कि इसकी पुष्टि न हो जाए। पुष्टिकरण की आवश्यकता वाला नियम केवल विवेक का नियम है। (पैरा सं. 5) [1175 जी-एच; 1176 ए-बी]

श्रीमति पनिबेन बनाम गुजरात राज्य एआईआर (1992) एससी 1817; मुन्नू राजा और एक अन्यबनाम मध्य प्रदेश राज्य (1976) 2 एससीआर 764; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम सागर यादव और अन्य एआईआर (1985) एससी 416; रामवती देवी बनाम बिहार राज्य एआईआर (1983) एससी 164; के. रामचंद्रा रेड्डी और एक अन्य बनाम लोक अभियोजक एआईआर (1976) एससी 1994; रशीद बेग बनाम मध्य प्रदेश राज्य (1974) 4 एससीसी 264; काका सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य एआईआर

(1982) एससी 1021; राम मनोरथ और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1981) 2 एससीसी 654; महाराष्ट्र राज्य बनाम कृष्णमूर्ति लक्ष्मीपति नायडू एआईआर (1981) एससी 617; सूरजदेव ओजा और अन्य बनाम बिहार राज्य एआईआर (1979) एससी 1505; ननहौ राम और एक अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य एआईआर (1988) एससी 912; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मदन मोहन और अन्य एआईआर (1989) एससी 1519; मोहनलाल गंगाराम गेहानी बनाम महाराष्ट्र राज्य एआईआर (1982) एस सी 839; और मोहन लाल और अन्य बनाम हरयाणा राज्य (2007) 9 एससीसी 151- पर भरोसा किया गया।

1.3 जैसा कि अपीलकर्ता- राज्य के वकील ने सही तर्क दिया है, भले ही तथाकथित प्रक्षेपों को विचार से बाहर रखा जाए, मृत्युपूर्व घोषणा में दिए गए बयान के प्रभाव को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। (पैरा सं. 6) 1178 ए, बी

2. कानून के सिद्धांतों और तथ्यात्मक परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि जहां तक अभियुक्त नंबर 2 का संबंध है, अभियोजन पक्ष आरोपों को स्थापित करने में सक्षम है। लेकिन सवाल ये है कि क्या मामला आईपीसी की धारा 302 के तहत आएगा. तथ्यात्मक परिदृश्य से पता चलता है कि मामला आईपीसी की धारा 304 भाग प के तहत कवर किया जाएगा और 6 साल की हिरासत की सजा न्याय के उद्देश्य को पूरा करेगी। सजा प्रतिवादी नंबर 2 की उम्र को देखते हुए दी गई है। (पैरा सं. 7) 1178 एबी

कानूनी संदर्भः-

एआईआर (1992) एससी 1817; भरोसा किया पैरा सं.- 5

(1976) 2 एससीआर 764;

एआईआर (1985) एससी 416;

एआईआर (1983) एससी 164;

एआईआर (1976) एससी 1994;

(1974) 4 एससी 264;

एआईआर (1982) एससी 1021;

(1981) 2 एससी 654;

एआईआर (1981) एससी 617;

एआईआर (1979) एससी 1505;

एआईआर (1988) एससी 912;

एआईआर (1989) एससी 1519;

एआईआर (1982) एससी 839;

(2007) 9 एससीसी 151

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील सं. 537/2003।

चंडीगढ़ में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के 1999 की आपराधिक अपील संख्या 200- डीबी में पारित अंतिम निर्णय और आदेश दिनांक 8.10.2001 से।

अपीलकर्ता की ओर से कुलदीप सिंह।

अप्रार्थीगण की ओर से के.के. गुप्ता।

न्यायालय का निर्णय डॉ. अरिजीत पसायत, जे. द्वारा सुनाया गया।

1. इस अपील में चुनौती पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ के फैसले को दी गई है, जिसमें उन उत्तरदाताओं को बरी करने का निर्देश दिया गया है, जिन्होंने भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 34 के साथ पढ़ी जाने वाली धारा 302 के

तहत दंडनीय अपराध के कथित अपराध कारित करने के लिए मुकदमे का सामना किया था। (संक्षेप में आईपीसी)। प्रत्येक को आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई और प्रत्येक को डिफॉल्ट शर्त के साथ 1,000/- रुपये का जुर्माना अदा करना पड़ा।

2. अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं:-

सुनीता (यहां मृतका के रूप में संदर्भित) की शादी घटना से लगभग 1 वर्ष पहले आरोपी-राज कुमार से हुई थी और जोड़े को एक बेटा पैदा हुआ था, हालांकि कुछ समय बाद उसकी मृत्यु हो गई थी। राज कुमार और उसके माता-पिता द्वारा की जा रही मांगों के कारण दोनों पक्षों के बीच संबंध तनावपूर्ण थे। राम प्यारी और प्यारा सिंह और सुनीता और उसके माता-पिता उनकी मांगों को पूरा करने में सक्षम नहीं थे, इसलिए तीनों आरोपियों ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया था। मृतका के भाइयों में से एक चमन लाल (पीडब्लू.7) का उसकी बहन के साथ व्यवहार के कारण राम प्यारी के साथ अप्रिय बोलचाल हुई थी और इस कृत्य ने आरोपी को और अधिक क्रोधित कर दिया था। 12 मार्च 1996 की आधी रात के करीब राम प्यारी ने सुनीता पर मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगा दी। सुनीता की चीख सुनकर उसके पति के भाई और उसकी पत्नी आ गए और वे उसे तुरंत गुरु नानक देव अस्पताल, अमृतसर ले गये। पुलिस स्टेशन सदर, अमृतसर के एएसआई, हरजिंदर सिंह (पीडब्लू.8) भी अस्पताल पहुंचे और डॉ. संजीव कुमार (पीडब्लू.9) से बयान देने के लिए सुनीता की फिटनेस का पता लगाने के बाद लगभग उसी समय 13 मार्च 1996 को सुबह 10.20 बजे (**Exh. Pm/2**) लेखबद्ध किया। इसके आधार पर सुबह 10.45 बजे पुलिस स्टेशन में एफ.आई.आर. दर्ज की गई और एएसआई हरजिंदर सिंह ने सुनीता का बयान मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज कराने के लिए उपायुक्त को आवेदन भी किया। इस संबंध में नायब-तहसीलदार लखबीर सिंह काहलों (पीडब्लू.6) को तदनुसार आवश्यक कार्रवाई करने के लिए नियुक्त किया गया था। वह भी अस्पताल गया और डॉ. कुलवर सिंह (पीडब्लू.4) की राय लेने के बाद कि सुनीता

बयान देने के लिए फिट है, शाम 6 बजे बयान (प्रदर्श पीएल) लेखबद्ध किया गया। दिनांक 14 मार्च 1996 सुनीता की मृत्यु हो गई। अनुसंधान पश्चात् अभियुक्तगण के विरुद्ध अपराध अन्तर्गत धारा 302/34 भा दं सं में आरोप विरचित किए गए। जिसमें अभियुक्तगण द्वारा अस्वीकार किया गया और विचारण शुरू किया गया था।

अभियोजन ने आरोप सिद्ध करने के लिए गवाहों को परीक्षित किया। मुख्य रूप से पी.डब्लू. 5 और 7 (क्रमशः अशोक कुमार और चमन लाल) के साक्ष्य का संदर्भ दिया गया था, जिनके सामने उसने 13 मार्च, 1996 को सुबह लगभग 10.30 बजे मौखिक मृत्युकालीन कथन (**Exh. Pm/2**) दिया था। लखबीर सिंह (पीडब्लू-6) ने मृत्युकालीन कथन दर्ज किया था। इसी तरह, जांच अधिकारी हरजिंदर सिंह, एएसआई (पीडब्लू-8) ने मृत्युकालीन कथन (**Exh. Pm/2**) दर्ज किया था और डॉ. संजीव कुमार (पीडब्लू-9) ने राय दी थी कि मृतका बयान देने के लिए फिट स्थिति में थी जो कि पीडब्लू 6 और 8 द्वारा लेखबद्ध किया गया था। अपीलकर्ता नंबर 1 ने अन्यत्र रहने की दलील (**Plea of alibi**) की वकालत की। उन्होंने आगे कहा कि वह मृतका को घायल अवस्था में अस्पताल लेकर गए थे। उपरोक्त बातों को साबित करने के लिए दो गवाह परीक्षित किए गए। विचारणीय न्यायालय ने पाया कि मृत्युकालीन कथन एएसआई हरजिंदर सिंह और लखबीर सिंह को दिए गए थे (**Exh PL और Pm/2**) से अभियोजन पक्ष के मामले को संदेह से परे स्पष्ट रूप से साबित कर दिया। यह भी पाया गया कि कथन **Exh. Pm/2** की अंतिम तीन पंक्तियों में राज कुमार और पियारा सिंह को किसी भी गलत काम से बाहर रखा गया था। बाद के बयान **Exh. Pm/2** से यह स्पष्ट था कि उसने पहले के बयान **Exh. Pm/2** में पहले से उल्लिखित तथ्यों को दोहराया था और फिर से किए गए कथन **Exh. Pm/2** में हेरफेर किया गया था। विचारणीय न्यायालय ने 13.5.1996 को सुबह 10.30 बजे पीडब्लू 5 और 7 को दिए गए मौखिक मृत्युकालीन कथन पर भरोसा किया। डॉक्टर और पीडब्लू-8 की साक्ष्य का हवाला देते

हुए यह पाया गया कि मृतका मृत्युकालीन कथन देने के लिए सचेत और मानसिक रूप से फिट स्थिति में थी। इस तथ्य का हवाला देते हुए कि एफआईआर तुरंत दर्ज की गई थी, दोषसिद्धि की गई।

दोषसिद्धि को उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई। अपीलकर्ताओं (यहाँ अप्रार्थीगण) का यह रुख था कि मृत्युकालीन कथन **(Exh. PL)** जिसमें हेरफेर किया गया था, जो कि मृतका और उसके भाइयों पीडब्लू 5 और 7 के बीच विचार-विमर्श के बाद तैयार किया गया था।

राज्य ने विचारणीय न्यायालय के फैसले का समर्थन किया था।

उच्च न्यायालय ने कहा कि बाद में सोच-समझकर मृतका ने यह जोड़ा होगा कि उसकी सास ने उसे आग लगाई थी और उसके ससुर घर में मौजूद थे, हालांकि मृत्युकालीन कथन (**Exh. PL)** में मृतका ने स्पष्ट रूप से सभी आरोपी व्यक्तियों को वास्तविक घटना में शामिल किया था। उच्च न्यायालय ने आरोपी व्यक्तियों के इस रुख को स्वीकार कर लिया कि मृत्युकालीन कथन (**Exh. Pm/2**) में अंतिम तीन पंक्तियों में छेड़छाड़ की गई ऐसा प्रतीत होता है। हालाँकि, यह नोट किया गया था कि मृतका की सास ने उसे आग लगा दी थी, लेकिन उसमें अन्य दो आरोपी व्यक्तियों का कोई संदर्भ नहीं था। उच्च न्यायालय ने यह माना कि चश्मदीद गवाहों के मामले में, यह पता लगाने के लिए बयान का विच्छेदन किया जा सकता है कि किस भाग पर विश्वास किया जा सकता है। लेकिन मृत्युकालीन कथनों के मामले में ऐसा नहीं किया जा सकता।

3. अपीलकर्ता के वकील ने कहा कि उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से गलत है। भले ही यह स्वीकार कर लिया जाए कि आरोपी व्यक्तियों के आग्रह के अनुसार कुछ हेरफेर किया गया था, मृत्युपूर्व घोषणा (**Exh. PL**) के प्रभाव से बिल्कुल

भी निपटा नहीं गया है। उक्त मृत्युकालीन कथन जिसे ए-2 का नाम दिया गया था। दोनों मृत्युकालीन कथनों में स्पष्ट रूप से ए-2 का उल्लेख था।

4. यह एक ऐसा मामला है जहां विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्तगण की दोषसिद्धि का आधार दिया गया मृत्युकालीन कथन था। जिस स्थिति में कोई व्यक्ति अपनी मृत्यु शैय्या पर है, वह अत्यधिक गंभीर, शांत है, कानून में उसके कथन की सत्यता को स्वीकार करने का कारण है। यही कारण है कि शपथ और जिरह की आवश्यकताओं को समाप्त कर दिया गया है। इसके अलावा यदि मृत्युकालीन कथन को बाहर रखा जाना चाहिए तो इससे न्याय की विफलता होगी क्योंकि पीड़ित आम तौर पर गंभीर अपराध में एकमात्र चश्मदीद गवाह होता है, बयान को रद्द करने से अदालत के पास सबूतों का कोई अंश नहीं बचेगा।

5. यद्यपि मृत्यु पूर्व दिए गए बयान को काफी महत्व दिया जाता है, लेकिन यह ध्यान देने योग्य है कि आरोपी के पास जिरह करने की कोई शक्ति नहीं है। सत्य का पता करने के लिए ऐसी शक्ति आवश्यक है जैसा कि शपथ का दायित्व हो सकता है। यही कारण है कि न्यायालय इस बात पर भी जोर देता है कि मृत्युपूर्व बयान इस प्रकार का होना चाहिए कि न्यायालय को उसकी सत्यता पर पूरा भरोसा हो। न्यायालय को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि मृतक का बयान या तो सिखाया या प्रोत्साहन या कल्पना का परिणाम नहीं था। अदालत को इस बात से भी संतुष्ट होना चाहिए कि हमलावर को देखने और पहचानने के स्पष्ट अवसर के बाद मृतक मानसिक स्थिति में था। एक बार जब न्यायालय संतुष्ट हो जाता है कि घोषणा सत्य और स्वैच्छिक थी, तो निस्संदेह, वह बिना किसी अतिरिक्त पुष्टि के अपनी सजा को आधार बना सकता है। यह कानून के पूर्ण नियम के रूप में निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि मरने से पहले दिया गया बयान दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं बन सकता जब तक कि इसकी पुष्टि न हो जाए। पुष्टिकरण की आवश्यकता वाला नियम केवल विवेक का नियम है।

इस न्यायालय ने कई निर्णयों में मृत्युपूर्व बयान को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत निर्धारित किए हैं, जिन्हें पनीबेन बनाम गुजरात राज्य,1 (एआईआर 1992 एससी 1817) में बताए अनुसार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

(1) न तो कानून का नियम है और न ही विवेक का कि मृत्यु पूर्व दिए गए बयान पर बिना पुष्टि के कार्रवाई नहीं की जा सकती। मुन्नु राजा और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य,2(1976)2 एससीआर 764),

(2) यदि न्यायालय इस बात से संतुष्ट है कि मृत्यु पूर्व दिया गया बयान सत्य और स्वैच्छिक है तो वह बिना किसी पुष्टि के उस पर दोषसिद्धि का आधार बना सकता है। उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम सागर यादव और अन्य,3 (एआईआर 1985 एससी 416) और रमावती देवी बनाम बिहार राज्य,4 (एआईआर 1983 एससी 164),

(3) न्यायालय को मृत्यु पूर्व दिए गए बयान की सावधानीपूर्वक जांच करनी होगी और यह सुनिश्चित करना होगा कि यह बयान सिखाया हुआ, प्रोत्साहन या कल्पना का परिणाम नहीं है। मृतक को हमलावरों को देखने और पहचानने का अवसर मिला और वह घोषणा करने के लिए उपयुक्त स्थिति में था। के. रामचंद्र रेड्डी और अन्य बनाम वी. लोक अभियोजक, 5 (एआईआर 1976 एससी 1994),,

(4) जहां मृत्यु पूर्व दिया गया बयान संदेहास्पद हो, वहां बिना पुष्टि साक्ष्य के उस पर कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए। रशीद बेग बनाम मध्य प्रदेश राज्य,6 (1974 (4) एससीसी 264),,

(5) जहां मृतक बेहोश था और कभी भी मृत्यु पूर्व बयान नहीं दे सका, उसके संबंध में साक्ष्य को खारिज कर दिया जाएगा। काका सिंह बनाम एमपी राज्य,7 (एआईआर 1982 एससी 1021),

(6) मृत्यु से पूर्व दिया गया बयान, जो दुर्बलता से ग्रस्त है, दोषसिद्धि का आधार नहीं बन सकता। राम मनोरथ और अन्य बनाम यूपी राज्य,8 (1981 (2) एससीसी 654),

(7) केवल इसलिए कि मृत्यु पूर्व दिए गए बयान में घटना का विवरण नहीं है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। महाराष्ट्र राज्य बनाम कृष्णमूर्ति लक्ष्मीपति नायडू,9 (एआईआर 1981 एससी 617),

(8) समान रूप से, केवल इसलिए कि यह एक संक्षिप्त बयान है, इसे खारिज नहीं किया जाना चाहिए। इसके विपरीत, कथन की संक्षिप्तता ही सत्यता की गारंटी देती है। सूरजदेव ओझा और अन्य बनाम बिहार राज्य,10 (एआईआर 1979 एससी 1505),

(9) आम तौर पर न्यायालय यह संतुष्ट करने के लिए कि क्या मृतक मृत्यु पूर्व बयान देने के लिए मानसिक रूप से उपयुक्त स्थिति में था, चिकित्सकीय राय पर गौर करता है। लेकिन जहां चश्मदीद ने कहा कि मृतक मृत्यु पूर्व बयान देने के लिए फिट और सचेत अवस्था में था, वहां चिकित्सकीय राय मान्य नहीं हो सकती। नानाहाऊ राम और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य,11 (एआईआर 1988 एससी 912),

(10) जहां अभियोजन पक्ष का बयान मृत्युपूर्व बयान में दिए गए बयान से भिन्न है, वहां उक्त घोषणा पर कार्रवाई नहीं की जा

सकती उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मदन मोहन और अन्य 12 (एआईआर 1989 एससी 1519),

(11) जहां मृत्युपूर्व बयान की प्रकृति में एक से अधिक बयान हैं, वहां समय के संदर्भ में पहले वाले बयान को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। निःसंदेह, यदि मृत्युपूर्व घोषणाओं की बहुलता को भरोसेमंद और भरोसेमंद माना जा सकता है, तो इसे स्वीकार करना होगा। मोहनलाल गंगाराम गेहानी बनाम महाराष्ट्र राज्य, 13 (एआईआर 1982 एससी 839) और मोहन लाल और अन्य बनाम हरियाणा राज्य, 14 (2007 (9) एससीसी 151),

6. जैसा कि अपीलकर्ता-राज्य के विद्वान वकील ने सही तर्क दिया है, भले ही तथाकथित प्रक्षेपों को विचार से बाहर रखा जाए, मृत्युकालीन कथन (**Exh-PL**) में दिए गए बयान के प्रभाव को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

7. ऊपर निर्धारित सिद्धांतों और तथ्यात्मक परिदृश्य पर विचार करते हुए, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि जहां तक अभियुक्त नंबर 2 का संबंध है, अभियोजन पक्ष दोषसिद्धि को स्थापित करने में सक्षम रहा है। लेकिन सवाल ये है कि क्या ये मामला आईपीसी की धारा 302 के तहत है। हमारे अनुसार तथ्यात्मक परिदृश्य से पता चलता है कि मौजूदा मामला आईपीसी की धारा 304 भाग **2** के अंतर्गत आएगा। 6 साल के कारावास की सजा न्याय के उद्देश्य को पूरा करेगी। सजा अभियुक्त नंबर 2 की उम्र को देखते हुए दी गई है। शेष सजा काटने के लिए उसे तुरंत हिरासत में आत्मसमर्पण करना होगा। अन्य उत्तरदाताओं की तुलना में अपील खारिज की जाती है।

8. उपरोक्त सीमा तक अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' के जरिए अनुवादक न्यायाधिकारी मनोज जीनगर, आर.जे.एस. द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण : यह निर्णय वादी के प्रतिबंधित उपयोग के लिए उसकी भाषा में समझाने के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।